ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

डॉ. अम्बेडकर : बौद्ध धर्म व शिक्षा

Dr. Jubeda Mirza Profesor Dept. Of History, Govt PG College, Sikar

Suman Choudhary* Research Scholar Dept. Of History Univ Of Rajasthan *Corresponding Author

बौद्ध धर्म एवं दर्शन के संस्थापक महात्मा गौतम बुद्ध सर्वप्रसिद्ध हैं। गौतम बुद्ध कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी कुँज में जहाँ अब नेपाल की घनी तराई है ई.पू. 560 के आस–पास पैदा हुए थे। उनके पिता शुद्धोदन शाक्य वंश के राजा थे, उनकी माँ का नाम रानी महामाया था।[1] बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था। गाथाओं के अनुसार उनके सम्बन्ध में ऐसी भविष्यवाणी की गई थी कि जिस दिन बुद्ध एक अपाहित रुग्ण मनुष्य या मरे हुए आदमी को देखेंगे उस दिन संन्यास ग्रहण कर लेंगे। राजवंश में जन्म लेने के फलस्वरूप इनके जीवन को सुखमय बनाने के लिए पिता ने भिन्न–भिन्न प्रकार के आमोद–प्रमोद का प्रबंध किया, ताकि सिद्धार्थ का मन विश्व की क्षणभंगुरता तथा दुःख की ओर आकर्षित न हो। पिता के हजार प्रयत्नों के बावजूद सिद्धार्थ का मन संसार की दुःखमय अवस्था की ओर जाने से न बच सका। कहा जाता है कि एक दिन घूमने के समय सिद्धार्थ ने एक रोग्रस्त व्यक्ति, एक वृद्ध और शमशान की आरे ले जाये जाते एक मृतक शरीर को देखा। इन दृश्यों का सिद्धार्थ के भावुक हृदय पर अत्यन्त ही गहरा प्रभाव पड़ा। इन दृश्यों के बाद बुद्ध को यह समझने में देर न लगी कि संसार दुःखों के अधीन है। संसार के दुःखों को किस प्रकार दूर किया जाय – यह चिन्ता निरन्तर बुद्ध को सताने लगी। दुःख के समाधान को ढूँढने के लिए एक दिन वे आधी रात को – अपनी पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को छोड़कर – राजमहल से निकल पड़े तथा उन्होंने संन्यास को अपनाया। विभिन्न प्रकार की यातनाएँ झेलने के बाद उन्हें ज्ञान मिला। उन्हें जीवन के सत्य के दर्शन हुए। तत्त्वज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित किये गये। इस नाम के अतिरिक्त उन्हें तथागत (जो वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानता है) तथा अर्हत्ता की संज्ञा दी गई।

सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद बुद्ध ने लोक–कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देशों को जनता तक पहुँचाने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घूम–घूमकर जनता को उपदेश देना आरम्भ किया। शिष्यों–प्रशिष्यों की नींव पर बौद्ध धर्म दर्शन का विकास किया। अहिंसा पर आधारित बौद्ध धर्म दर्शन भारत में लोकप्रिय हुआ और नृपों एवं भिक्षुओं की सहायता से दूसरे देशों में फैला। इस प्रकार यह धर्म विश्व–धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। 'अनित्य दुःख, अनात्म'[2] इस सूत्र में बुद्ध का सारा दर्शन है।

बुद्ध के सारे उपदेश चार आर्य–सत्यों में सन्निहित हैं।[3] ये चार आर्य सत्य इस प्रकार हैं –

1. संसार दुःखों से परिपूर्ण है
2. दुःखों का कारण भी है
3. दुःखों का अन्त सम्भव है
4. दुःखों के अन्त का मार्ग है।

प्रथम आर्य सत्य को दुःख, द्वितीय आर्य–सत्य को दुःख समुदय, तृतीय आर्य–सत्य को दुःख निरोध, चतुर्थ आर्य–सत्य को दुःख–निरोध–मार्ग कहा जाता है। ये चार आर्य–सत्य बौद्ध धर्म के सार हैं।[4] बुद्ध की समस्त शिक्षायें किसी–न–किसी रूप में इन चार आर्य सत्यों से प्रभावित हुई है। सचमुच, इनके अभाव में बौद्ध दर्शन की कल्पना भी सम्भव नहीं है। बुद्ध ने चार आर्य–सत्यों की महत्ता को स्वयं 'मज्झिम निकाय' में इस प्रकार स्पष्ट किया है – ''इसी से (चार आर्य सत्य से) अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।''[5] चार आर्य सत्यों पर अत्यधिक जोर देना बुद्ध के व्यवहारवाद का प्रमाण कहा जा सकता है।

जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वैद्य और चिकित्साशास्त्र महत्वपूर्ण है उसी प्रकार जीवन को, मन को पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए सद्धर्म और उसका उपदेश महत्वपूर्ण है। इसलिये धर्म–जिज्ञासु में उपदेष्टा के प्रति विनम्रता, श्रद्धा आदि गुणों का होना आवश्यक हैं। बौद्धमत में प्रसिद्ध ये चार आर्यसत्य चतुष्ट्य की अवधारणा का चिकित्साशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिये इसके उपदेष्टा बुद्ध को महाभिषक् भी कहा जाता है।[6]

दुःख आर्य सत्य, दुःखसमुदय आर्यसत्य, दुःखनिरोध आर्यसत्य एवं दुःखनिरोधगामी प्रतिपदा आर्यसत्य का निरूपण किये बिना विषय की पूर्णता सम्भव नहीं प्रतीत होगी। क्योंकि बौद्धवाङ्मय के आधाररूप को विषय के निमित्त जानना परम आवश्यक है।

बौद्ध वाङ्मय में दुःख के विषय में कहा गया है कि संसार में पैदा होना दुःख है; बुढ़ापा दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक, रोना, कल्पना, दुःखी होना, चिन्तित व उदास होना भी दुःख है, अप्रिय विषयों से संयोग दुःख है, प्रिय विषयों से वियोग भी दुःख है और जो (प्रिय वस्तु) चाहते हुए भी न मिले वह भी दुःख है, संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि पाँच उपादानस्कन्ध ही दुःख है।

दुःखसमुदय आर्यसत्य में कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा को समग्र सांसारिक दुःखोत्पत्ति का कारण माना है। संसार में प्रियकर एवं रूचिकर लगने वाली वस्तुओं में, तृष्णा पैदा होने की चाह होने पर पैदा होती है और रहने की चाह होने पर रहती है, फिर भले ही वे वस्तुएँ इन्द्रियाँ हों या उनके विषय, वेदना हों या संज्ञा, संस्कार हों या विज्ञान, वितर्क हों या विचार। ऐसा करते–करते उसका उसमें राग उत्पन्न होता है, रागोत्पाद से वह क्रमशः उपादान, भव–जाति–जरा–मरण–शोक–परिदेव–दुःख–दौर्मनस्य के जाल में दृढ़तया आबद्ध होता जाता है।[7]

दुःखनिरोध आर्यसत्य में इस दुःख का निरोध हो सकता है, दर्शाया गया है। यदि हम इस तृष्णा के प्रति स्वचित्त में अशेष वैराग्य की भावना उत्पन्न कर सकें। इस पूर्ण वैराग्य की भावना से ही तृष्णा का निरोध हो सकता है, तृष्णा निरोध से उपादान (परिग्रह की इच्छा) का निरोध, उपादान निरोध से भव, जाति, जनरा–मरण, शोक–परिदेव, दुःख दौर्मनस्य का नाश (निरोध) अवश्यम्भावी है। इस तृष्णाक्षय से हुए दुःखनिरोध को ही 'निर्वाण' कहते हैं।[8] एक ऐसा आयतन (स्थान) भी है, जहाँ न पृथ्वी, न जल, न अग्नि, न वायु है, न आकाशानन्त्यायतन, न विज्ञानानन्त्यायतन, न आकिंचन्यायतन, न नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है, न यह लोक है, न परलोक, न चन्द्रमा है, न सूर्य, वहाँ न आना, न जाना, न स्थिति, न विनाश, न पतन, न उत्पाद कहा गया है। वह तो आधाररहित, संसरणरहित एवं आलम्बनरहित है। यही (इस स्थान पर पहुँचना ही) दुःख का अन्त है।[9]

दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्यसत्य में जो विषयभोगों में, मौज–मस्ती, हीन (तुच्छ), ग्राम्य (अश्लील), अभद्रजनसेवित, अनार्य, अनर्थमय है; या यह जो स्वशरीर को भी कष्ट देने वाली, अनार्य, अनर्थयुक्त तपः साधना है – जिज्ञासु को सुखानुभूति के दोनों ही किनारे छोड़ कर मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये, जिसका कि तथागत ने उपदेश दिया है। तथागत का यह उपदेश आँखें खोल देने वाला, सही उपाय बताने वाला, चित्तवृत्ति–शमन के लिये, अभिज्ञा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये एवं निर्वाण तक पहुँचने के लिये सर्वोत्तम है। यही दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाला आठ अंगों से युक्त आर्य (श्रेष्ठ) मार्ग है, जैसे – सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि। इन मार्गों का अनुसरण कर मनुष्य अपने दुःखों का अन्त कर सकता है।[10]

बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है जो बौद्ध सिद्धान्तों और आचारों के पालन से सम्भव है, इसके लिए तृष्णा का नाश आवश्यक है।[11] निर्वाण का मार्ग उपनिषदों में प्रतिपादित मार्ग से पृथक् नहीं है। राग, द्वेष और मोह या विमुक्ति ही निर्वाण है।[12] बुद्ध ने विद्या और ज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हुए समस्त दुःखों और अज्ञान का उनके आलोक से समाप्त होना माना है तथा ज्ञान से ही मुक्ति स्वीकार की है।[13] बुद्ध ने ज्ञानोत्पत्ति के लिए शरीन–शुद्धि पर बल दिया और शरीर–शुद्धि शील के आचरण से सम्भव थी। शील का अर्थ साधक के समस्त सात्विक कर्मों से था। भिक्षु और उपासक दोनों के लिए शील का अनुपालन अपेक्षित था। भिक्षु के लिए दशशील थे और गृहस्थ के लिए पंचशील–प्राणातिपात विरति, अदत्तादानविरति, काममिथ्याचारविरति, मृषावादविरति तथा सुरामैरेय प्रमादस्थानविरति। शील के साथ–साथ समाधि और प्रज्ञा का भी निवेशन किया गया था। प्रज्ञा के तीन प्रकार बताए गए हैं, श्रुतमयी, चिन्तामयी और भावनामयी। महात्मा बुद्ध का कथन है कि प्रज्ञा के अनुष्ठान और उसके जीवन्त होने से ज्ञान–दर्शन, मनोमय शरीर का निर्माण, ऋद्धियाँ, दिव्यश्रोत्र, परचित्त–ज्ञान, पूर्वजन्म–स्मरण और दिव्य चक्षु की प्राप्ति होती है तथा इसके उपरान्त दुःखक्षय का ज्ञान हो जाता है। उस स्थिति में चित्त विमल और शुद्ध हो जाता है तथा कामाश्रव (भोगने की इच्छा), भवाश्रव (जन्म प्राप्त करने की इच्छा) और अविद्याश्रव (भोगने की इच्छा), भवाश्रव (जन्म प्रज्ञप्त करने की इच्छा) और अविद्याश्रव (अज्ञान) से सर्वदा के लिए विमुक्ति की जाती है। तदुपरान्त उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। वस्तुतः बौद्ध दर्शन में शील, समाधि और प्रज्ञा 'त्रिरत्न' के नाम से जाने जाते हैं, जिनके अनुगमन से निर्वाण का पथ प्रशस्त होता है। अन्य धर्मों के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति मृत्युपरान्त होती है, किन्तु बौद्ध धर्म के अनुसार यह इसी जीवन में सम्भव है। भगवान् बुद्ध निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी बहुत दिनों तक जीवित थे। निर्वाण में आस्रवों, एषणाओं, राग–द्वेष,–मोह, संयोजन,

तृष्णा, कर्म, भव, नाम–रूप, उपाधि, संस्कार आदि अशेष का निरोध हो जाता हैं विद्या से क्लेश समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में संसार–चक्र निरुद्ध होता है। वस्तुतः निर्वाण जीवन की समस्या है तथा मुक्ति का दूसरा नाम है।[14] इसकी प्राप्ति से जीव जीवन और मरण से छुटकारा पा जाता है और उसे मुक्ति मिल जाती है। यह अमृत के समान है। इसकी प्राप्ति के बाद जीव को किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसकी पूर्णतः संतुष्टि हो जाती है और वह समस्त बन्धनों से रहित होकर मुक्त हो जाता है।

REFERENCES

1. Bodhnikaya Chapter- 5, Pg- 21-25
2. Dhampeet Chapter- 2, Pg- 15-25
3. Majham Nikaya Chapter- 5, Pg- 15-20
4. Abhidhampeethak Chapter- 1, Pg- 20-22
5. 2500 Yrs of Buddhism Chapter- 1, Pg- 2-10